विमुक्त दिवस व्याख्यान

वक्ता: न्यायमूर्ति के.वी. विश्वनाथन

30 अगस्त,2023

[नोट: पाठकों के लिए स्पष्टता और विषय की तारतम्यता को ध्यान में रखते हुए इस ट्रांसक्रिप्ट का अनुवाद किया गया है और क्रिमिनल जस्टिस एंड द पुलिस अकाउंटेबिलिटी प्रोजेक्ट के सदस्यों द्वारा संपादित किया गया है। किसी प्रकार की संदेह की स्थिति में या इस व्याख्यान को उद्धृत करने के लिए कृपया व्याख्यान का वीडियो देखें।]

सबसे पहले, मैं क्रिमिनल जस्टिस एंड द पुलिस अकाउंटेबिलिटी प्रोजेक्ट (सीपीए प्रोजेक्ट) को धन्यवाद देना चाहता हूं कि उन्होंने आपराधिक जनजाति अधिनियम (सीटीए) निरस्त करने की 71वीं वर्षगांठ पर अपने विचार साझा करने के लिए मुझे आमंत्रित किया। इस कानून का नाम अपनी जबान पर लाने तक में भी बहुत परेशानी हो रही है।

इस बातचीत के दौरान, हम और आप यह जानेंगे कि यह कितना भयावह कानून था जो कुछ जनजातियों को जन्म के आधार पर अपराधी घोषित कर देता था। इसके तहत विशिष्ट जनजातियों को अनिवार्य रूप से अपने अंगुलियों के निशान देने पड़ते थे। इसके अलावा उनका पंजीकरण अनिवार्य था, उनकी निगरानी का प्रावधान था और यहां तक कि उन्हें पुनर्वासित किया जा सकता था। यह सब न्यायिक समीक्षा से परे थाक्योंकि संविधान पूर्व के इस कानून में यह दर्ज था कि 'इस कानून के किसी भी प्रावधान को किसी भी अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती है।'

इससे पहले कि मैं इस व्याख्यान के मूल विषय पर अपनी बात आपसे साझा करूं, हमें यह समझने की ज़रूरत है कि इस क़ानून में क्या-क्या प्रावधान थे और कैसे कुछ दूरदर्शी लोगों के आह्वान के कारण इसे निरस्त किया गया। फिर, हम विश्लेषण करेंगे कि इस कानून का क्या अंजाम हुआ, क्या संवैधानिक अदालतों द्वारा इसकी समीक्षा की गई। हम यह भी समझेंगे कि समुदायों के अधिसूचित श्रेणी से बाहर होने के बाद भी इस कानून का सामाजिक प्रभाव क्या रहा है। इसके बाद, हम संविधान बनने और इस कानून को निरस्त किए जाने के बाद के परिदृश्य की चर्चा करेंगे क्योंकि रिपोर्ट और अनुभवजन्य आंकड़ों से यह चिंता सामने आती है कि सीटीए का भूत अभी भी सता रहा है। अंत में, हम इस पर विचार करने के लिए कानूनी और विधायी ढांचे के भीतर मौजूद सुझावों पर ध्यान देंगे। इस पृष्ठभूमि में हम सबसे पहले श्री भीकू रामजी

इदाते आयोग की रिपोर्ट का जिक्र करते हुए इस अधिनियम के पीछे के ऐतिहासिक कारणों और उन पर हुए अध्ययनों को संक्षेप में देख सकते हैं।

श्री इदाते का कहना है कि 'औपनिवेशिक ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में अपराध नियंत्रण के गलत प्रयास के रूप में आपराधिक जनजाति कानून, 1871 लागू करने से आपराधिक जनजाति श्रेणी का जन्म हुआ। इस कानून के जरिए, अंग्रेजों ने लगभग 150 समुदायों को जन्म से ही अपराधी घोषित कर दिया। उनकी लगातार निगरानी की गई और उनकी गतिविधियों को विनियमित किया गया। इसके कारण उत्पीड़न हुआ एवं आजीविका नष्ट हुई और यहां तक कि उन्हें कानून प्रदत्त बुनियादी अधिकारों से भी वंचित किया गया। अपराधियों की श्रेणी का निर्माण औपनिवेशिक आधुनिकता और राष्ट्र राज्य के विभिन्न तंत्रों के ताकतवर होने का परिणाम था। 1860 आते-आते, ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति के बाद नए श्रमिक वर्ग के उद्भव के कारण राज्य अपने नागरिकों को नियंत्रित करने के प्रयासों को लेकर असमंजस में था। इसी आवश्यकता के कारण सरकार ने औद्योगिक श्रमिक वर्ग और आपराधिक श्रमिक वर्ग के बीच विभेद करना शुरू किया।' इस कारण 1869 का कानून वजूद में आया। इसे 1911 और फिर आखिरी बार 1924 में संशोधित किया गया और 1952 में निरस्त कर दिया गया।

जब भारत में **वंशानुगत आपराधिक कर्म** और यहाँ प्रचलित जाति व्यवस्था को जोड़ने का सिद्धांत सामने आया तो ऐसे कानून को लागू करने की उपजाऊ जमीन तैयार हुई। प्रसंगवश, हमें यह इतिहास भी याद रखना चाहिए कि डॉ. मजूमदार ने भारतीय समाज को व्यवस्थित करने के औपनिवेशिक सरकार के जुनून और उस समय प्रचलित नस्लवादी दृष्टिकोण का विरोध किया था। इसके अलावा, उन्होंने किसी व्यक्ति को जन्म से ही अपराधी करार देने और इसे वंशानुगत घटना मानने का भी खंडन किया था। उन्होंने साबित किया कि कोई वंशानुगत आधार पर अपराधी नहीं होता, गलत वातावरण और खराब आर्थिक स्थिति किसी को अपराधी बनाती है। लेकिन ऐसा किए जाने तक बहुत देर हो चुकी थी, कानून लागू किया जा चुका था।

इस अधिनियम में केवल एक व्यक्ति को ही नहीं, बल्कि पूरे समुदाय को अपराधी माना गया था। सीटीए की धारा 3 के तहत, यदि प्रशासक को यह विश्वास हो कि कोई जनजाति, गिरोह या व्यक्तियों का समूह व्यवस्थित रूप से गैर-जमानती अपराधों को अंजाम देने का आदी है, तो उन्हें आपराधिक जनजाति के रूप में चिन्हित किया जा सकता था। स्थानीय सरकार की मात्र व्यक्तिपरक संतुष्टि ही पर्याप्त थी। स्थानीय कार्यकारी प्रमुख द्वारा 'किसी जनजाति को अधिसूचित किए जाने की' अनुशंसा के बाद उनके पंजीकरण, अंगुलियों का निशान लेने, निगरानी और उन्हें फिर से बसाने संबंधी अधिसूचना जारी की जाती थी। सीटीए के तहत सिर्फ एक

अधिसूचना के जरिए, समुदायों को कलंकित और अपराधियों के रूप में चित्रित किया गया। यह धारणा बनाई गई कि ऐसी जनजाति का हर सदस्य अपराधी है। यहाँ तक कि बच्चों को भी नहीं बख्शा गया। ऐसा सिर्फ इस आधार पर किया गया क्योंकि वे एक विशेष समुदाय के माता-पिता की जैविक संतान थे। इस अधिसूचना को अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती थी।

मेरे अनुसार, यह न केवल संबंधित जनजातियों बल्कि सभ्य समाज में रहने वाले हर नेक इरादे और सही सोच वाले व्यक्ति की गरिमा का घोर अपमान था। यदि हम इस कानून को अपने संविधान के बरक्स रखें, तो यह कई आधारों पर खरा नहीं उतरेगा। संविधान 1949 में अपनाया गया और यह कानून 1952 में निरस्त कर दिया गया था। अदालत के पास इसे रद्द करने का कोई अवसर नहीं था। हालाँकि, संविधान का कोई भी छात्र आपको बिना देरी किए यह बताएगा कि यह कानून अनुच्छेद 21 के तहत प्रतिष्ठापित गरिमा की अवधारणा का गंभीर तिरस्कार था। व्यापक वर्गीकरण के अलावा इसके अंतर्गत सभी को केवल जन्म के आधार पर शामिल किया गया था, चाहे कोई अपराध में शामिल हो अथवा नहीं। यह स्पष्ट रूप से मनमाना और अनुच्छेद 14 का उल्लंघन था। यदि आप आज बिना किसी न्यायिक निरीक्षण के एकत्रित अंगुलियों के निशान की जांच करें, तो यह पुट्टास्वामी फैसले के अनुसार निजता के अधिकार का गंभीर उल्लंघन है।

संविधान या मैग्ना कार्टा के लागू होने का जश्न मनाना सामान्य बात है। हालाँकि, आज सीटीएको निरस्त करने का जश्न मनाना भी महत्वपूर्ण है, जिसके कभी वजूद में होने पर यकीन करना भी कठिन है।

इस कानून ने हमारे देश की सामाजिक संरचना पर भी स्थायी निशान छोड़ा। इसने लागू होने के बाद से विमुक्त जनजातियों याडीएनटी (जैसा कि उन्हें अब कहा जाता है) के सदस्यों के प्रति समाज के अन्य सदस्यों के नजरिए को बहुत ज्यादा प्रभावित किया है। अनंतशयनम अयंगर समिति ने यह दर्ज किया है कि "कई प्रतिष्ठानों में कार्यरत ऐसी जनजातियों के सदस्यों को तब काम से निकाल बाहर किया गया जब उनके निदेशकों को यह पता चला कि वे ऐसी जनजातियों से संबंधित हैं, जिन्हें सीटीए के तहत अपराधी करार दिया गया है।" समग्र रूप से समाज उन्हें संदेह की दृष्टि से देखा और उनके साथ अपमानजनक व्यवहार किया। पूरे समुदायों के निर्दोष सदस्यों को समाज के अन्य सदस्यों के साथ जुड़ाव बनाने की अनुमति नहीं दी गई और कई

पीढ़ियों को इस जन्मजात नकारात्मक पहचान को ढोने के लिए मजबूर किया गया। तो, इस क़ानून का इतना ज्यादा दुष्प्रभाव था।

अब, हमें ऐसे कुछ गुमनाम नायकों को याद करना चाहिए, जिन्होंने इस कानून को निरस्त करने की मांग की थी। सबसे पहले, मद्रास प्रांत के विधान सभा के सदस्य श्री राघवैया की बात करते हैं जिन्होंने एक पैम्फलेट बंटवाया था। इस अधिनियम के तहत जनजातियों को पुलिस स्टेशन में रिपोर्ट करना पड़ता था और इसके तहत सरकारी मशीनरी को निगरानी की शक्ति भी मिली हुई थी, जिसमें आधी रात को उनकी बस्तियों में जाना और दो बार उनकी हाजिरी लेना शामिल था। अब जानते हैं कि पैम्फलेट में श्री राघवैया ने इस बारे में क्या लिखा था: “अनपढ़ पंजीकृत सदस्यों को समय का सही ज्ञान नहीं होता है। वे पूरी रात जागने की परेशानी और साथ ही रात के अंधेरे में गांव से गुजरने पर किसी संदेह में पकड़े जाने के जोखिम से भी बचना चाहते हैं। ऐसे सदस्य पुलिस स्टेशन में या गाँव के पाटिल के आवास पर रात बिताते हैं या अक्सर धूल भरी सड़क के किनारे सोने का विकल्प चुनते हुए मौसम की सख्ती का सामना करते हैं।"

इसे डॉ. पट्टाबी ने भी उतने ही सजीव ढंग से सामने रखा, जिन्होंने संसद में अपने हस्तक्षेप के दौरान कहा था कि "एक बार जब मैं पुलिस स्टेशन में बंद था, तो मैंने सुबह-सुबह वहां लगभग 40 या 50 लोगों को फर्श पर बिना किसी चटाई के लाशों की तरह पड़ा हुआ देखा। जब मैंने पूछा कि मामला क्या था, तो उन्होंने कहा कि वे आपराधिक जनजातियों के सदस्य थे, जिन्हें कानून के तहत पुलिस स्टेशन परिसर में सोना पड़ता है। सूअरों और कुत्तों के साथ भी ऐसा व्यवहार नहीं किया जाता है।”

अब अगर उपरोक्त विवरण परेशान और अशांत करने वाली बात है, तो डॉ. पट्टाबी के भाषण का यह हिस्सा वास्तव में दिल दहला देने वाला है। डॉ. पट्टाबी कहते हैं, "इसके अलावा जेलों में एक बहुत ही अजीब प्रथा विद्यमान है। वहां मैला साफ करने का काम सभी जाति के कैदियों को नहीं सौंपा जाता। यह काम केवल हरिजनों और आपराधिक जनजाति के सदस्यों द्वारा कराया जाता है। जब भी उन्हें जेल में सफाईकर्मियों की कमी महसूस होती है, तो जेल अधीक्षक को बस पुलिस अधीक्षक को सूचित करना होता है और तुरंत इन लोगों के एक समूह को दोषी ठहरा कर जेल भेज दिया जाता है ताकि वे मैला सफाई का काम कर सकें। वे इन लोगों की मुफ्त सेवा के इतने आदी हो गए हैं कि किसी-न-किसी तरह वे घर पर भी इन लोगों से अपना काम करवाते हैं और वो भी हमेशा मुफ्त में।” तो जब यह कानून लागू किया गया तो व्यवहार में यह इस प्रकार इस्तेमाल में लाया जाता था।

उत्पीड़ित समुदायों के लोगों, विशेष रूप से डीएनटी से संबंधित लोगों के मानवाधिकारों और गरिमा के हनन के ऐसे हड्डियां कंपा देने और खून जमा देने वाले अनगिनत उदाहरणों में से ये केवल दो दृष्टांत हैं। इन हालातों में डॉ. अय्यंगार समिति का गठन हुआ और यह कानून निरस्त करने की सिफारिश की गई। जब अधिनियम निरस्त किया गया, तो श्री वेलायुधन ने संसद में एक महत्वपूर्ण बात कही। उन्होंने कहा, "मैंने इससे संबंधित अध्ययन किया है, निश्चित तौर पर इस कानून का प्रभाव अपराधी जनजातियों के जीवन पर पड़ेगा और यही होने वाला भी है। सदन को यह धारणा नहीं बनानी चाहिए कि इस अधिनियम के निरस्त होने से 40 लाख लोग मुक्त हो गए हैं। यह कानून बाद में दूसरे स्वरूप में सामने आ सकता है।"

यही वह चिंता है जो जानकर हलकों में उठाई जाती है। जबकि वह कानून खत्म हो गया है, लेकिन आज भी लगभग 9 अलग-अलग राज्यों में आदतन अपराधी अधिनियम (एचओए) लागू है, जो राज्य का विषय है। भले ही कोई केंद्रीय कानून नहीं है, फिर भी ऐसे प्रावधान कई कानून में मौजूद हैं। सीआरपीसी की धारा 110 के प्रावधान के तहत एक्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट को अपने अधिकार क्षेत्र में रहने वाले आदतन अपराधी (संक्षेप में एचओ) से सुरक्षा प्रदान करने का आदेश देने का अधिकार है। सीआरपीसी स्वयं एचओ शब्द को परिभाषित नहीं करती है। परिभाषा संबंधित राज्य क़ानूनों से ली गई है या लागू करने वाली तंत्र के विवेक पर निर्भर करती है।

धारा 110 के तहत आदेशों को दोष सिद्धि माना जाता है। अभी भी कई ऐसे वैधानिक नियमावलियां हैं जो डीएनटी को एचओ मानती हैं। ऐसा ही एक उपनियम मध्य प्रदेश जेल नियमावली में है जिसे अध्ययनों में उजागर किया गया है। मध्य प्रदेश जेल नियमावली, 1968 के नियम 411 (iv) में स्पष्ट प्रावधान है कि संबंधित राज्य सरकार अपनी विवेकाधीन शक्तियों के इस्तेमाल से एचओ के दायरे में किसी भी अनुसूचित जनजाति को शामिल कर सकेगी। यह सीपीए प्रोजेक्ट के अध्ययन का हिस्सा है और चिंता का विषय भी है। यदि यह वैधानिक प्रावधान है तो इस पर तुरंत ध्यान दिया जाना चाहिए। आगे हम यह जानेंगे कि राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा स्वत: संज्ञान लिए जाने के बाद राजस्थान में इसी तरह के वैधानिक प्रावधान को कैसे समाप्त किया गया। अध्ययनों से पता चलता है कि एचओ को साफ-साफ परिभाषित नहीं किए जाने के कारण, डीएनटी के सदस्यों की एचओ के रूप में पहचान की जाती है, उनकी आवाजाही प्रतिबंधित की जाती है और अच्छे व्यवहार के लिए उन्हें सुरक्षा घेरे में लिया जाता है। अब समय आ गया है कि इस पर ध्यान दिया जाए।

सीपीए प्रोजेक्ट के सदस्यों द्वारा लिखे गए एक जानकारीपरक लेख में कहा गया है, “भारत भर के पुलिस स्टेशन अपने अधिकार क्षेत्र में एचओ, जिन्हें हिस्ट्रीशीटर भी कहा जाता है,

की जानकारी रखते हैं, जिसमें उनके जीवन और दैनिक गतिविधियों का व्यापक विवरण होता है। हालाँकि उनकी पहचान सिर्फ जाति के आधार पर नहीं की जाती है, लेकिन सामूहिक पुलिस कार्रवाई में बड़े पैमाने पर डीएनटी समुदायों के सदस्यों की पहचान आदतन अपराधियों के रूप में की जाती है।" यदि यह केवल एक बयान या बिना प्रमाण के कोई दावा होता तो इसे नजरअंदाज किया जा सकता था, लेकिन ये एक दस्तावेज पर आधारित है जिसमें दर्ज विवरण उन्होंने मध्य प्रदेश की राजधानी के एक खास पुलिस स्टेशन में देखा। वे अपने लेख में आगे लिखते हैं, “किसी के दैनिक जीवन को पुलिस रजिस्टरों में दर्ज किए जाने का डर इतना व्यापक है कि ‘राणा’, आदतन अपराधी के रूप में चिन्हित पारधी समुदाय के अन्य सदस्यों की तरह, अपने जीवन की हर गतिविधि पर पुनर्विचार करते हैं, जिसमें दोस्तों के साथ स्थानीय चाय की दुकान पर जाने जैसा रोजमर्रा का कार्य भी शामिल है। यह विवरण पारधी समुदाय के जीवन, स्वतंत्रता और सम्मान को तार-तार करते हैं। यकीनन, आदतन अपराधियों के रजिस्टर का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा वह है जिसमें अनौपचारिक विवरण दर्ज किए जाते हैं। इस हिस्से में अधिकारी दस्तखत कर इसे सत्यापित करते हैं। वे यह दर्ज करते हैं कि उन्होंने हर पखवाड़े में कम-से-कम एक बार आदतन अपराधी का व्यक्तिगत रूप से पीछा किया है या उसकी निगरानी की है ताकि यह जांच की जा सके कि क्या उसने व्यापक निगरानी के बावजूद पुलिस को चकमा देकर चोरी की है।” और वे भोपाल के गोविंदपुरा थाने का हवाला देते हैं जहाँ उन्हें यह रजिस्टर दिखाया गया। अगर ये सच है तो इसकी जांच होनी चाहिए।

अंकुश मारुति शिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य 2019 मामला इस संबंध में बहुत ही महत्वपूर्ण है, जहां अदालत ने खानाबदोश/घुमन्तु जनजातियों से संबंधित आरोपियों की पुनर्विचार याचिकाओं को स्वीकार करते हुए यह टिप्पणी की थी कि ऐसे जांच में ऐसी जनजातियों के व्यक्तियों को पकड़ना आम घटना बन गई है। पुनर्विचार याचिका स्वीकार की गई और जो आरोपी इसमें शामिल नहीं थे, उन्हें बरी कर दिया गया।

मुख्य चिंता यह है कि कैसे सीटीए का भूत अभी भी सता रहा है। यह एक अध्ययन में शामिल लोगों द्वारा गंभीरतापूर्वक व्यक्त किया गया डर है और अब समय आ गया है कि इस पर ध्यान दिया जाए। सीपीए प्रोजेक्ट द्वारा जो दो रिपोर्ट जारी की गई हैं, उनमें से एक एमपी आबकारी कानून और दूसरी वन्यजीव संरक्षण अधिनियम से संबंधित है। दोनों अध्ययन उन पारंपरिक व्यवसायों पर प्रभाव डालने से संबंधित हैं, जिन पर इन समुदायों के सदस्य आश्रित हैं। इस बात पर चिंता व्यक्त की गई है कि समुदायों के सदस्य प्राचीन समय से जिन कुछ मौजूदा पारंपरिक व्यवसायों पर आश्रित हैं, कानून में उन पर विचार करने का प्रावधान नहीं है। जैसा कि हमने पहले देखा है, इस कारण उन्हें जंगल में धकेल दिया गया है। वह आजीविका

का साधन बन गया है और मौजूदा कानूनों के तहत इसे भूलवश गंभीर अपराध माना जा रहा है। वे उन क़ानूनों को स्पष्ट और निश्चित रूप से उपयुक्त बनाने का सुझाव देते हैं। श्री बालकृष्ण सिद्रम रेनके आयोग (संक्षेप में रेनके आयोग) भी इसी तरह की भावनाओं को प्रतिध्वनित करता है।

औद्योगीकरण और शहरीकरण के प्रभाव के कारण, इनमें से कई पारंपरिक व्यवसाय प्रचलन से बाहर हो गए हैं। रेनके आयोग का कहना है, "ये बदलाव मुख्यतः औपनिवेशिक वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण, शहरीकरण, तकनीकी प्रगति, कृषि पद्धतियों में बदलाव, बाज़ार हस्तक्षेप और व्यावसायीकरण के कारण हुए हैं।" रेनके आयोग का यह भी कहना है कि कानूनों, विशेष रूप से वन अधिनियम, वन्यजीव संरक्षण अधिनियम और आबकारी अधिनियम में हुए बदलावों ने विमुक्त घुमंतू और अर्ध-घुमंतू समुदायों को उन संसाधनों तक पहुंच से वंचित कर दिया है, जिन पर उनका पारंपरिक अधिकार है और उनकी आजीविका छीन ली गई है। वास्तव में, इसने उन्हें कोई स्थायी विकल्प प्रदान किए बिना रातों-रात अपराधी बना दिया।

सीपीए प्रोजेक्ट का अध्ययन गिरफ्तारियों के विश्लेषण के आधार पर ऐसे आंकड़े भी प्रस्तुत करता है जो यह बताता है कि मध्य प्रदेश में आबकारी कानून के तहत की गई गिरफ्तारियों में पूर्व में विमुक्त किए गए जनजातियों की संख्या का प्रतिशत कितना है। वे बताते हैं कि कुल गिरफ्तार लोगों में से 56.35% उत्पीड़ित समुदायों से हैं जिसमें से 7% गिरफ्तारियां डीएनटी के सदस्यों से संबंधित हैं। उनका मानना है कि उनके अनुभव और अध्ययन के आधार पर यह आंकड़ा बहुत बड़ा और उल्लंघनकारी प्रतीत होता है।

वन्यजीव संरक्षण अधिनियम के संदर्भ में, यह चिंता व्यक्त की गई है कि बहुत सारी शिकायतें अज्ञात सूचनादाताओं के आधार पर दर्ज की जाती हैं जिन्हें मुखबिर के नाम से जाना जाता है और ऐसा प्रतीत होता है कि 86% शिकायतें मुखबिरों की सूचना पर आधारित थीं। इसलिए, पारंपरिक व्यवसायों को इन शिकायतों के दायरे से बाहर रखे जाने का सुझाव दिया गया है। लेकिन नीतिगत मामला होने के कारण इन पर ठोस टिप्पणी करना मुश्किल होगा। नीति निर्माता निश्चित रूप से इस पर नजर रखेंगे और इसमें संदेह नहीं है कि इस पर ध्यान दिया जाएगा।

अध्ययनों और आयोगों द्वारा यह बात सामने लाई गई है कि तटस्थ दिखाई देने वाले कुछ कानूनों के संचालन के तरीके डीएनटी को निशाना बनाने वाले होते हैं। शायद उन्हें आंकड़ों के

आधार पर ऐसा लगता है कि उन्हें आसानी से निशाना बनाया जाता है और उत्पीड़न के आसान विकल्प के रूप में देखा जाता है।

मैंने ऊपर राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा स्वत: संज्ञान लिए जाने का उल्लेख किया था। अदालत ने 2020 में राजस्थान जेल नियमावली का स्वत: संज्ञान लिया, जिसके तहत जेल अधिकरियों को कैदियों की जाति की पहचान करने और उन्हें जाति के आधार पर शौचालय साफ करने एवं झाड़ू लगाने जैसे कार्य आवंटित करने की अनुमति प्राप्त थी। राजस्थान सरकार ने स्वत: संज्ञान के परिणामस्वरूप जेल नियमावली में संशोधन किया और जाति-आधारित वर्गीकरण को समाप्त कर दिया।

यह चर्चा तब तक अधूरी रहेगी जब तक आपके विचार करने के लिए कुछ सुझाव न प्रस्तुत किए जाएं। पहला है प्रवर्तन तंत्र को संवेदनशील बनाना। राज्यों के प्रमुख या मुख्य सचिव एक ऐसी समावेशी समिति गठित कर सकते हैं जो कानून लागू करने वाली एजेंसियों को पहले से उपलब्ध साहित्य और पृष्ठभूमि के प्रति संवेदनशील बनाए ताकि जाने-अनजाने सीटीए की बुराइयों को वर्तमान आपराधिक न्याय व्यवस्था में व्याप्त न होने दिया जाए।

राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण के पूर्व सदस्य होने के नाते, मैं यह भी चाहूंगा कि जिला कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिक सक्रिय भूमिका निभाए। मुकदमा शुरू होने से पहले ही कानूनी सहायता सुनिश्चित की जानी चाहिए और मुझे लगता है कि यह कार्यपालिका का संवैधानिक दायित्व है कि वह न केवल सीआरपीसी द्वारा निर्धारित प्रक्रिया और दस्तावेज का पालन करे, बल्कि अभियुक्तों को उनके अधिकारों के बारे में निश्चित तौर पर सूचित भी करे। विजय सिंह चंदूभा जाडेजा (बनाम गुजरात राज्य) मामले में अदालत ने कहा कि हर किसी को सूचना प्राप्त करने का अधिकार है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि सीटीए न केवल कठोर, बल्कि भयावह और विकृत क़ानून था। इसे निरस्त करने से केवल शाब्दिक मुक्ति नहीं मिलनी चाहिए, बल्कि यह वास्तविक अर्थों में कार्यान्वित होनी चाहिए।

मैं यह भी चाहूंगा कि राज्य मानवाधिकार आयोग बृहतर और सक्रिय भूमिका निभाए जैसा कि श्री रेनके आयोग पहले ही सिफारिश कर चुका है। सीटीए को प्रतिबिंबित करने वाले पक्षपाती कानून, यदि मौजूद हैं, जैसा कि हमने मध्य प्रदेश और राजस्थान के प्रावधानों में देखा है, तो उनकी समीक्षा की जानी चाहिए। अंतिम समाधान मिलने तक डीएलएसए और राज्य मानवाधिकार आयोगों को एचओ रजिस्टर का ऑडिट करने की अनुमति दी जानी चाहिए। कोई अपराध दर्ज करते समय संवेदनशीलता प्रदर्शित करना उचित होगा ताकि फिर से पूर्वाग्रह न पनपे। साथ ही नागरिक समाज को भी इसके प्रति संवेदनशील होने की जरूरत है। मुझे लगता

है कि इस परिप्रेक्ष्य में ऐसी चर्चाएं आंखें खोलने वाली साबित होंगी, जैसा कि यह विभिन्न पहलुओं पर मेरे लिए साबित हुई हैं।

मेरा मानना है कि ऐसी चर्चाएं सभी संस्थानों से लेकर सजग नागरिकों तक व्यापक पैमाने पर आयोजित की जानी चाहिए। और मैं इन चर्चाओं की शुरुआत करने के लिए सीपीए प्रोजेक्ट को बधाई देता हूं।